Indian J. Soc & Pol. 03(01): 2016 :125-127 **ISSN 2348-0084(P)**
ISSN 2455-2127(O)

सप्तकीय भूमिकाओं में अज्ञेय की आलोचना दृष्टि

राजेश चन्द्र पाण्डेय[1]
[1]वरिष्ठ प्रवक्ता, (हिन्दी), डी.वी. (पी.जी.) महाविद्यालय,उरई, जालौन (उ.प्र.), भारत

ABSTRACT

समीक्षा, दृष्टि और चिंतन का व्यापक स्वरुप है। जिस तरह कविता भावभूमियों का विस्तार है, उसी प्रकार समीक्षा मानस का विस्तार है लेकिन जब बात कवि–समीक्षक की हो तो यह जानना अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है कि कविता और समीक्षा दोनों के बीच उसका संतुलन कैसा है। हिन्दी की समीक्षा परंपरा छायावाद से ही इस विशेषता से युक्त दिखायी पड़ती है। छायावादी कवियों की कविता को तत्कालीन समीक्षकों द्वारा नकारे जाने की प्रतिक्रिया स्वरुप कवि–समीक्षक की परंपरा आरंभ हुई। प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी की यह परंपरा आगे चलकर अज्ञेय, मुक्तिबोध तक एक व्यापक रुप ग्रहण करती है। इसे सर्वाधिक व्यापक जामा पहनाने का कार्य अज्ञेय ने किया। 1943 में 'तार सप्तक' का प्रकाशन केवल कविता की जमीन ही नहीं अपितु समीक्षा के धरातल को भी नयी परिभाषा प्रदान करने वाला है। अज्ञेय ने सप्तकों की भूमिका के माध्यम से जो वक्तव्य दिये उनका समीक्षा परंपरा में आदरणीय स्थान है। सप्तकीय भूमिका के इन वक्तव्यों में अज्ञेय की प्रमुख स्थापनाओं को क्रमवार देखने से समीक्षा की नूतन परंपरा का बोध संभव है।

KEYWORDS: *अज्ञेय, सप्तक, हिन्दी समीक्षा*

अज्ञेय कृत काव्यालोचना को समझने के लिये अज्ञेय द्वारा संपादित सप्तकों की भूमिकाएं महत्वपूर्ण है। इनका ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद है। रचना और आलोचना दोनों ही क्षेत्रों में इन भूमिकाओं के माध्यम से नयी जमीन और सोच तैयार हुई।

(क) 'तार सप्तक' (सन् 1943) : 'तार सप्तक' प्रथम संस्करण की भूमिका मे संपादक अज्ञेय ने निम्नलिखित तत्वों/तथ्यों पर बल दिया है–

- कविता प्रयोग का विषय है।(*तारसप्तक,निवृत्ति और पुनरावृत्ति*) कवि राहों का अन्वेषी होता है।(वही,पृ10)
- सत्य ही वह परम तत्व है जो कवि के लिये शोध का विषय है।(वही,पृ11)
- प्रत्येक रचनाकार अपने समय से बँधा होता है।(वही,पृ 5)
- कवि के व्यक्तित्व की विशिष्टताएं उसकी रचना में प्रतिबिम्बित होती है।(वही,पृ6)
- 'कविता ही कवि का परम वक्तव्य है।' तथापि आज के युग में पाठक की बदली हुई सामाजिक स्थिति में कवि का आत्म–स्पष्टीकरण वांछनीय हो गया है।((वही))
- कवि–कर्म की मौलिक समस्याएं–काव्य–विषय संवेदना का पुनः संस्कार इस शर्त के स्वीकार के साथ कि कवि–कर्म एक सामाजिक उत्तरदायित्व है; साधारणीकरण और संप्रेषण; संवेदना के पुनः संस्कार के साथ भाषा–अर्थात् शब्द का संस्कार।(वही,पृ 270)
- समर्थ रचनाकार प्रकृत्या प्रयोगशील होता हैं।(वही,पृ 271) प्रयोग के प्रमुख क्षेत्र हैं– भाषा और शिल्प।
- कविता अभिवयक्ति है– अभिव्यक्ति में दो पक्ष होते हैं– रचनाकार और पाठक। रचना केवल स्वान्तः सुखाय नहीं होती है।(वही,पृ 271)
- 'काव्य सबसे पहले शब्द है।'कवि और काव्य की सबसे प्रमुख समस्या 'अर्थवान् शब्द की समस्या है।' कवि–कर्म का चरम उत्तरदायित्व (और चरम उपलब्धि भी) साधु और संस्कारी शब्द की खोज है। जो कवि इस के प्रति सजग नहीं है, वह कवि नहीं है।(वही,पृ 301)
- रुढ़ि ' और 'परंपरा' पर्यायवाची नहीं है (जैसा कि कुछ नये आलोचक और कुछ नये कवि मानते हैं) रुढ़ि 'निरा जाड्य है' और परम्परा एक ऐतिहासिक संबंध है।(वही,पृ303)
- काव्य की भारतीय पंरपरा में अज्ञेय की आस्था है।(वही,पृ 304)

(ख) 'दूसरा सप्तक' (सन् 1951): 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त सूत्रों की पृष्ठभूमि सबसे पहले उल्लेखनीय है। अज्ञेय के ही शब्दों में–

'प्रयोगवाद' नाम के नये मतवाद के प्रवर्तन का दायित्व क्योंकि अनचाहे और अकारण ही ('तार – सप्तक' के प्रकाशन के बाद) हमारे मत्थे मढ़ दिया गया है, इसलिये हमारा इन प्रश्नों के उत्तर में कुछ कहना आवश्यक है–(दूसरा सप्तक, पृ 06) अस्तु; अज्ञेय इस भूमिका में प्रयोगवाद से आरम्भ करते हैं। अज्ञेय के सिद्धान्त संक्षेप में इस प्रकार हैं –

- प्रयोग का कोई वाद नहीं होता है। न प्रयोग अपने आप में इष्ट का साध्य है।(वही,पृ 06) लेकिन प्रयोग, रचना के क्षेत्र में प्रगति का सूचक है।(वही,पृ07)

1: Corresponding Author

- ❖ प्रयोग सत्य को जानने और उसे संप्रेषित करने का साधन है, इसी रुप में वह इष्ट और कवि के रचना–सामर्थ्य का सूचक है।(वही,पृ 07)
- ❖ वस्तु और शिल्प दोनों क्षेत्र में प्रयोग फल–प्रद होता है।(वही,पृ07)
- ❖ प्रयोगशीलता का संबंध माध्यम (भाषा अर्थात् शब्द) से जुड़ता है।(वही,पृ06)
- ❖ माध्यम की सीमा परखे बिना उसका श्रेष्ठ उपयोग नहीं हो सकता है।(वही,पृ07)
- ❖ कालिदास के साक्ष्य पर अज्ञेय यह प्रतिपादित करते हैं कि वाक् में (अभिधेय अर्थ के अतिरिक्त) अर्थ की प्रतिपत्ति कवि – पद की सार्थकता और उसका गौरव है।(वही,पृ11) इस भूमिका में अज्ञेय ने इस पर किंचित विस्तार से विचार किया है।
- ❖ परंपरा कवि के लिये तभी अर्थवान् है जब वह कवि का सहज संस्कार बन जाये।(वही,पृ07)

(अपने मत के प्रतिपादन में कालिदास से साक्ष्य उपस्थित करना, इस तथ्य के प्रमाण के रुप में स्वीकार किया जाना चाहिये कि अज्ञेय परंपरा के प्रति आस्थावान हैं – वैसे इसके अनेक प्रमाण उनकी रचनाओं में भरे पड़े हैं, जिन्हें सरलता से ढूँढ़ा और देखा–समझा जा सकता है।)

- ❖ अज्ञेय ने इस आरोप को खारिज कर दिया है कि 'तार सप्तक' के कवि 'साधारणीकरण' का सिद्धान्त नहीं मानते हैं। इस आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही प्राप्त होता है कि अज्ञेय का साधारणीकरण का सिद्धान्त मान्य है। इस संदर्भ में अज्ञेय के निष्कर्ष इस प्रकार हैं– काव्य–रचना के क्षेत्र में 'प्रयोग' की आवश्यकता 'साधारणीकरण' से जुड़ी है। प्रयोग का पहला और प्रमुख क्षेत्र 'माध्यम का श्रेष्ठ उपयोग' है और 'साधारणीकरण' का माध्यम 'भाषा' है। 'ज्ञान के विशेषीकरण' के आधुनिक युग में भाषा के अनेक मुहावरे प्रचलित हैं (और प्रतिदिन नये मुहावरे विकसित होते जा रहे हैं); इस कारण संबंधों में बदलाव आ गया है अर्थात् 'रागात्मक संबंधों की प्रणालियाँ बदल गयी हैं।(वही,पृ09) इस प्रकार 'साधारणीकरण' जटिलतर हो गया है।

इस तथ्य को इस रुप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि 'व्यक्ति सत्य को व्यापक सत्य' बनाना, आज के कवि के लिये सबसे बड़ी चुनौती है।

- ❖ इस समस्या का निदान करने के लिये कवि 'वाक्' में 'अर्थ की प्रतिपत्ति' करता है। इस परिप्रेक्ष्य में अज्ञेय ने 'साधारणीकरण' की नयी व्याख्या/परिभाषा प्रस्तुत की है– 'जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है, और अभिधेय बन जाता है तब उस शब्द की रागोत्तेजक शक्ति भी क्षीण हो जाती है । उस अर्थ से 'रागात्मक सम्बन्ध' नहीं स्थापित होता। कवि तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जिससे पुनः 'राग का संचार' हो, पुनः रागात्मक संम्बन्ध स्थापित हो। साधारणीकरण का अर्थ यही है। नहीं तो, अगर भाव भी वही जाने – पुराने हैं, रस भी, और संचारी– व्यभिचारी सब की तालिकाएँ बन चुकी हैं तो कवि को नया करने के लिये क्या रह गया है ? क्या है जो कविता को आवृत्ति नहीं, सृष्टि का गौरव दे सकता है ? कवि नये तथ्यों को उनके साथ नये रागात्मक सम्बन्ध जोड़कर नये सत्यों का रुप दे, उन नये सत्यों को प्रेष्य बनाकर उन का साधारणीकरण करे, यही नयी रचना है।'(वही,पृ11)
- ❖ सहृदय (पाठक) के लिये अज्ञेय द्वारा ग्राहक का 'प्रयोग' भी ध्यान देने योग्य है।
- ❖ कविता की परख उसी के 'गुण–दोष' के आधार पर होनी चाहिये।(वही,पृ14)

(ग) 'तीसरा सप्तक' (सन् 1959) : 'तीसरा सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में नयी कविता और नये कवि हैं। ये सिद्धान्त संक्षेप में निम्नलिखित हैं–

- ❖ नयी कविता (और श्रेष्ठ कविता) की प्रयोगशीलता का पहला आयाम 'भाषा' से सम्बन्ध रखता है।(तीसरा सप्तक,पृ07)
- ❖ 'प्रत्येक शब्द का प्रत्येक समर्थ उपयोक्ता उसे नये संस्कार देता है।' इसी के द्वारा पुराना शब्द नया होता है– यही उस का कल्प है (इसी अर्थ में कवि कल्पक है) इसी प्रकार शब्द का वैयक्तिक प्रयोग भी होता है और प्रेषण का माध्यम भी बना रहता है, दुरुह भी होता है और बोधगम्य भी, पुराना परिचित भी रहता है और स्फूर्तिप्रद अप्रत्याशित भी।(वही,पृ08)
- ❖ कवि ने शब्द को कुछ नया दिया है या वह केवल लकीर पीटने वाला है। कवि की उपलब्धि की यही कसौटी है।(वही,पृ08)
- ❖ 'काव्य का विषय और काव्य की वस्तु (कन्टेण्ट) अलग–अलग चीजें हैं।
- ❖ विषय केवल 'नये' हो सकते हैं, 'मौलिक' नहीं – मौलिकता वस्तु से ही सम्बन्ध रखती है। विषय सम्प्रेष्य नहीं है, वस्तु सम्प्रेष्य है।(वही,पृ08)
- ❖ कवि की मौलिकता की कसौटी 'सम्प्रेषण' है।(वही,पृ09)
- ❖ काव्य वस्तु और काव्य शिल्प अलग नहीं है; उन्हें प्रेषण से अलग नहीं किया जा सकता है।(वही,पृ11)

- ❖ वस्तु सत्य का संप्रेषण प्रयोग का विषय है। इसके साथ यह भी ध्यान रखना होगा कि 'काव्य में सत्य क्योंकि वस्तु सत्य का रागाश्रित रुप है, इसलिये उस में व्यक्ति–वैचित्र्य की गुंजाइश तो है ही बल्कि व्यक्ति की छाप से युक्त होकर ही वह काव्य का सत्य हो सकता है। क्रीड़ा और लीला–भाव भी सत्य हो सकते हैं– जीवन की ऋजुता भी उन्हें जन्म देती है और संस्कारिता भी। देखना यह होता है कि सत्य के साथ खिलवाड़ या 'फ्लर्टेशन' मात्र न हो।(वही,पृ12)
- ❖ काव्य का आस्वादन वैयक्तिक आग्रहों से ऊपर की चीज है।(वही,पृ14)

(घ) 'चौथा सप्तक' (सन् 1979) : 'चौथा सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय की काव्य–दृष्टि के महत्वपूर्ण बिन्दु इस प्रकार है–

- ❖ समकालीन आलोचना संकीर्ण, मताग्रही और एकांगी है, इसलिये कि 'उस ने नये रचनाकार को दिग्भ्रमित किया है; और पाठक को भी इस लिये पथ भ्रष्ट किया है कि उस ने पाठक के सामने जो कसौटियाँ दी हैं वे स्वयं झूठी हैं।(वही,पृ10)
- ❖ आज की कविता का बहुत बड़ा और शायद सबसे बड़ा दोष यह है कि उस पर एक 'मैं' छा गया है वह भी एक अपरीक्षित और अविसर्जित 'मैं'। आज की कविता बहुत बोलती है, जबकि कविता का काम बोलना है ही नहीं।(वही,पृ14)

इस प्रकार काव्य का 'मैं' पर्सोना के रुप में ही काव्य में हो सकता है–

'जब वह काव्य अथवा वक्तव्य प्रत्यक्ष रुप से कवि का न होकर एक पर्सोना अथवा अभिनेय चरित्र के रुप में उसका हो।(वही,पृ12)काव्य में नाटकीयता को स्वीकृति देते हुये अज्ञेय ने लिखा है–'सच्चाई को प्रस्तुत करने के लिये मुखौटे'(वही,पृ12) (मास्क या चेहरा) लगाये जाते हैं।

तुलनीय : किसी भी बड़े सत्य को कहने के लिये मुखौटे की आवश्यकता पड़ती है।

मानव इतना बड़ा कहाँ कि बिना मुखौटे के किसी बड़े सत्य को जबान पर ला सके।(शाश्वती टीप सं0176)

कवि का विसर्जित मैं– 'सौंप दे सकना अपने–आप में साधारणीकरण की एक कसौटी है।(चौथा सप्तक,पृ117)

अंततः यह कहा जा सकता है कि सप्तकों के आयोजन से जिस तरह अज्ञेय ने हिन्दी कविता को एक नयी दिशा दी – राहों के अन्वेषण का जोखिम उठाया, उसी तरह और उसी के साथ, उन्होंने काव्यालोचन को संकीर्ण परिधियों से ऊपर उठाने का प्रयास किया। 'तार सप्तक' के और बाद में नये कवियों के सामने मूल समस्या 'व्यक्ति सत्य' को 'व्यापक सत्य' बनाने की थी। कवि की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा अर्थात् शब्द है – कविता शब्दों में होती है; इसलिये नए कवि का मुख्य सरोकार भाषा की–शब्द की सीमित अर्थवत्ता के पार जाना था। ध्यान देने योग्य है कि अज्ञेय ने भाषा, साधारणीकरण और संप्रेषण की समस्या को एक साथ प्रस्तुत किया क्योंकि ये तीनों जुड़े हुए हैं। परंपरा को पूर्ण सम्मान देते हुये उन्होंने कवि के संदर्भ में विवेचन – विश्लेषण किया। ध्यान दिया जाये कि 'तार सप्तक' का प्रकाशन आज़ादी के पहले हुआ था। 'तार सप्तक' के कवियों और उसके संपादक– आयोजक अज्ञेय को भाषा से जुड़े खतरों, आजाद भारत में हिन्दी की स्थिति का पूर्वाभास हो चला था। 'दूसरा' और 'तीसरा सप्तक' तक आते–आते हिन्दी की स्थिति दयनीय और हीनतर होने लगी। हिन्दी को अंग्रेजी जैसी ताकतवर भाषा का प्रतिपक्षी बना दिया गया।

अज्ञेय ने अपनी एक डायरी में लिखा भी है– 'सारा राष्ट्र अगर अंग्रेजी बोलेगा तो हिन्दी की, प्रादेशिक भाषाओं की उन्नती कहाँ से होगी।'(अंतरा,पृ30) 'राष्ट्रीय अस्मिता' और 'सांस्कृतिक विरासत' के प्रति निष्ठा रखने वाला कोई भी विवेकशील कवि अज्ञेय की पीड़ा को समझ सकता है, जो उपर्युक्त वाक्य में झलकती है। संचार साधनों और विज्ञापनी संस्कृति का बढ़ता हुआ जाल अंग्रेजी भाषा (भारत के संदर्भ में औपनिवेशिक भाषा–प्रभु वर्ग की भाषा) का बढ़ता हुआ वर्चस्व, माडर्न बनने की होड़ या सनक के चलते अपनी संस्कृति को पुरानी समझकर उपेक्षा(वही,पृ67) भाव से देखना, साहित्य और आलोचना के क्षेत्र में पश्चिमी आदर्शों को अपनाने की ललक, संक्षेप में, वे परिस्थितियाँ भी जिनका साहस और संकल्पपूर्वक सामना करने के लिये अज्ञेय ने अपने सिद्धांत सामने रखे। इस आयोजन – अनुष्ठान में अपनी भाषा के माध्यम से अपनी शक्ति बढ़ाने, अपने को पहचानने का संकल्प ही प्रमुख था।

सन्दर्भ

अज्ञेय : *शाश्वती,* राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली,1979
अज्ञेयः *दूसरा सप्तक,* भारतीय ज्ञानपीठ,नई दिल्ली,1996
अज्ञेय : *चौथा सप्तक,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली,2009
अज्ञेय : *तीसरा सप्तक,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
अज्ञेय : *तार सप्तक,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली 2005
अज्ञेय : *अंतरा,* राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली,1975